एक सर्वे के मुताबिक भारत में साल भर में शादियों पर जितना खर्च हो रहा है, उतनी कई देशों की जीडीपी भी नहीं है

सनातन में शादी एक संस्कार होती थी जो अब एक इवेंट बन कर रह गई हैं। पहले शादी समारोह मतलब दो लोगों को जुड़ने का एहसास कराते पवित्र विधि विधान, परस्पर दोनों पक्षों की पहचान कराते रीति-रिवाज, नेग भी मान सम्मान होते थे।

पहले हल्दी और मेंहदी यह सब घर अंदर हो जाता था किसी को पता भी नहीं होता था। पहले जो शादियां मंडप में बिना तामझाम के होती थी, वह भी शादियां ही होती थीं और तब दाम्पत्य जीवन इससे कहीं ज्यादा सुखी थे। परंतु समाज व सोशल मीडिया पर दिखावे का ऐसा भूत चढ़ा है कि किसी को यह भान ही नहीं है कि क्या करना है क्या नहीं ?

यह एक दूसरे से ज्यादा आधुनिक और अमीर दिखाने के चक्कर में लोग हद से ज्यादा दिखावा करने लगे हैं।

अड़तालिस किलो की बिटिया को पचास किलो का लहंगा भारी न लगता। माता-पिता की अच्छी सीख की तुलना में कई किलो मेकअप हल्का लगता है। हर इवेंट पर घंटों का फोटो शूट थकान नहीं देता पर शादी की रस्म शुरू होते ही पंडितजी जल्दी करिए, कितना लंबा पूजा पाठ है, कितनी थकान वाला सिस्टम है कहते हुए शर्म भी न आती।

वाक़ई, अब की शादियां हैरान कर देने वाली हैं। मज़े की बात ये है कि ये एक सामाजिक बाध्यता बनती जा रही है। उत्तर भारत में शादियों में फ़िज़ूल खर्ची धीरे धीरे चरम पर पहुंच रही है।

पहले मंडप में शादी, वरमाला सब हो जाता था। फिर अलग से स्टेज का खर्च बढ़ा, अब हल्दी और मेहंदी में भी स्टेज, खर्च बढ़ गया है। प्री-वेडिंग फोटोशूट, डेस्टिनेशन वेडिंग, रिसेप्शन, अब तो सगाई का भी एक भव्य स्टेज तैयार होने लगा है। टीवी सीरियल देख देख कर सब शौक चढ़े है। पहले बच्चे हल्दी में पुराने कपड़े पहन कर बैठ जाते थे अब तो हल्दी के कपड़े पांच-दस हजार के आते है।

प्री वेडिंग शूट, फर्स्ट कॉपी डिजाइनर लहंगा, हल्दी-मेहंदी के लिए थीम पार्टी, लेडीज संगीत पार्टी, बैचलर्स पार्टी, ये सब तो लडकी वाला नाक उँची करने के लिये करवाता है। यदि लड़की का पिता खर्च मे कमी करता है तो उसकी बेटी कहती है कि शादी एक बार ही होगी और यही हाल लड़के वालों का भी है।

मजे की बात यह है कि स्वयं बेटा-बेटी ही इतना फिल्मी तामझाम चाहते हैं, चाहे वो बात प्री-वेडिंग शूट की हो या महिला संगीत की, कहीं कोई नियंत्रण नहीं है। लड़की का भविष्य सुरक्षित करने के बजाय पैसा पानी की तरह बहाते हैं। अब तो लड़का-लड़की खुद मां-बाप से खर्च करवाते हैं।

शादियों में लड़के वालों का भी लगभग उतना ही खर्चा हो रहा है जितना लड़की वालों का। अब नियंत्रण की आवश्यकता जितना लड़की वाले को है, उतना ही लड़के वाले को भी। दोनों ही अपनी दिखावे की नाक ऊंची रखने के लिए कर्जा लेकर घी पी रहे हैं।

कभी ये सब अमीरों, रईसों के चोंचले होते थे लेकिन देखा-देखी अब मिडिल क्लास और लोअर मिडिल क्लास वाले भी इसे फॉलो करने लगे है। रिश्तों में मिठास खत्म और ये सब नौटंकी शुरू हो गई। एक मज़बूत को देखकर उसके चक्कर में दूसरा कमजोर भी फंसता जा रहा है।

कुछ वर्षों पहले ही शादी के बाद औकात से भव्य रिसेप्शन का क्रेज तेजी से बढ़ा। धीरे-धीरे एक दूसरे से बड़ा दिखने की होड़ एक सामाजिक बाध्यता बनती जा रही है। इन सबमें मध्यम वर्ग परिवार मुसीबत में फंस रहे हैं कि कहीं अगर ऐसा नहीं किया तो समाज में उपहास का पात्र ना बन जायें। सोशल मीडिया और शादी का व्यापार करने वाली कंपनिया इसमें मुख्य भूमिका निभा रहीं हैं। ऐसा नहीं किया तो लोग क्या कहेंगे, सोचेंगे का डर ही ये सब करवा रहा है।

कोई नही पूछता उस पिता या भाई से जो जीवनभर जीतोड़ मेहनत करके कमाता है ताकि परिवार खुश रह सके। वो ये सब फिज़ूलखर्ची भी इसी भय से करता है कि कोई उसे बुढ़ापे में ये ना कहे के आपने हमारे लिए किया क्या।

दिखावे में बर्बाद होते समाज को इसमें कमी लाने की बहुत ही आवश्यकता है वरना अनर्गल पैसों का बोझ बढ़ते बढ़ते वैदिक वैवाहिक संस्कारों को समाप्त कर देगा।

अडानी, अंबानी का लोकतंत्र

हेमंत कुमार झा

अमेरिका के न्यायिक इतिहास में एक मशहूर जज हुए हैं लुइस ब्रैंडिस। एक सौ वर्ष पहले सुप्रीम कोर्ट में दिए गए एक चर्चित फैसले में उन्होंने कहा था, "किसी भी देश में लोकतंत्र और चंद हाथों में पूंजी का संकेंद्रण एक साथ नहीं चल सकते। अगर चंद हाथों में पूंजी का संकेंद्रण होगा तो लोकतंत्र महज मखौल बन कर रह जाएगा और अंततः वह पूंजी के हाथों का खिलौना बन जाएगा।"

हालांकि, कालांतर में खुद अमेरिका में ब्रैंडिस के इस कथन के उलट पूंजी का संकेंद्रण निर्लज्ज तरीके से बढ़ने लगा और बावजूद अपनी आंतरिक मजबूती के, अमेरिकी लोकतंत्र और उसकी नीतियों पर कुछ खास पूंजीपतियों का प्रभुत्व कायम हो गया।

अब चूंकि अमेरिका द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व महाशक्ति बन कर अंतरराष्ट्रीय पटल पर छा गया तो पूंजीपतियों के इशारों पर बनने वाली उसकी नीतियों का नकारात्मक असर दुनिया के गरीब और कमजोर देशों पर पड़ना स्वाभाविक था।

हालात बेहद संगीन तब होने लगे जब 1950 के दशक में आइजनहावर अमेरिका के राष्ट्रपति बने। असल में पूर्व सैन्य अधिकारी आइजनहावर अमेरिकी हथियार कंपनियों के अप्रत्यक्ष राजनीतिक प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्रपति चुनाव में उतरे थे। पहले विश्वयुद्ध से त्रस्त और दूसरे विश्वयुद्ध से ध्वस्त मानवता अंतरराष्ट्रीय शांति की तलाश में थी और सोवियत संघ के भी महाशक्ति बन कर उभरने के बाद दुनिया में रणनीतिक संतुलन जैसा बनने लगा था।

अब...युद्ध हो ही नहीं तो हथियार कंपनियों का व्यापार कैसे फले फूले। तो, उन्होंने चुनाव में आइजनहावर का खुल कर समर्थन किया और जीत के बाद राष्ट्रपति ने भी उन्हें निराश नहीं किया। उन्होंने बढ़ते सोवियत प्रभाव को बहाना बना कर मध्य पूर्व के देशों सहित कई अन्य देशों को सैन्य सहायता के नाम पर बड़े पैमाने पर हथियार मुहैया कराना शुरू किया। अब तो द्वितीय विश्वयुद्ध के खत्म होने के बाद सुस्त पड़ी हथियार कंपनियों की चल निकली। उनका व्यापार तेजी से बढ़ने लगा।

आइजनहावर ने अमेरिकी-सोवियत शीतयुद्ध को अपनी आक्रामक नीतियों से एक नए मुकाम पर पहुंचाया। अमेरिकी इतिहास में इन नीतियों को "आइजनहावर सिद्धांत" के नाम से जाना जाता है।

1950 के दशक में अमेरिकी राजनीति और अर्थनीति में बड़ी हथियार कंपनियों के बढ़ते प्रभुत्व ने फिर कभी पीछे मुड़ कर नहीं देखा। उसके बाद जितने भी राष्ट्रपति आए, सबने बातें तो शांति की कीं लेकिन दुनिया के हर कोने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष युद्ध को बढ़ावा देने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। इतनी कि मानवता त्राहि-त्राहि कर उठी।

अमेरिकी अर्थव्यवस्था में हथियार उद्योग की बड़ी भूमिका है और वहां की राजनीति को बड़े हथियार सौदागरों ने हमेशा अपने निर्णायक प्रभावों के घेरे में रखा। नतीजा, उन पूंजीपतियों की असीमित लालच ने दुनिया को फिर कभी चैन और शांति से जीने नहीं दिया। युद्ध पर युद्ध होते रहे, उनका मुनाफा बढ़ता गया। आजकल चल रहे रूस-यूक्रेन युद्ध में भी अमेरिकी-यूरोपीय बहुराष्ट्रीय हथियार कंपनियों के प्रभावों को महसूस किया जा सकता है।

तकनीक के विकास और उसके विस्तार ने पूंजीपतियों के लिए अवसरों के नए द्वार खोले क्योंकि उन्होंने तकनीक पर अपनी पूंजी के बल पर कब्जा कर लिया। धीरे धीरे जनता उनकी गुलाम होती गई और वे देश और दुनिया को हांकने लगे। राजनीति उनके इशारों पर नाचने वाली नृत्यांगना बन गई।

इन वैश्विक रुझानों से भारत जैसे गरीब और विकासशील देशों को भी प्रभावित होना ही था। विशेषकर 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकरण की तीव्र होती प्रवृत्तियों ने भारत में भी चंद हाथों में पूंजी के संकेंद्रण को बढ़ावा देना शुरू किया। यद्यपि यहां की राजनीति में भी आजादी के बाद से ही पूंजीपतियों का प्रभाव बना रहा था लेकिन नई सदी तक आते आते यह प्रभाव एक नए मुकाम पर पहुंच गया। क्रोनी कैपिटलिज्म के प्रतीक के रूप में अंबानी घराने के उत्थान ने भारतीय राजनीति के नैतिक पतन का एक नया अध्याय लिखना शुरू किया।

देखते ही देखते अंबानी घराना इस देश का शीर्षस्थ अमीर बन गया। उनकी संपत्ति में इतनी तेजी से बढ़ोतरी कैसे हुई यह आम लोगों ही नहीं, अर्थशास्त्रियों के लिए भी जिज्ञासा का विषय बना रहा। देश की आर्थिक नीतियों के निर्माण पर इस घराने की पकड़ जगजाहिर रही।

लेकिन, क्रोनी कैपिटलिज्म को गैंगस्टर कैपिटलिज्म में बदलते देर नहीं लगी जब नई सदी के दूसरे दशक में राजनीति के मोदी काल ने गौतम अडानी के नाम को कारपोरेट जगत के शीर्ष पर ला खड़ा किया।

नियमित अंतराल पर जारी होती रही ऑक्सफेम सहित अन्य कई रिपोर्ट्स में चेतावनी दी जाती रही कि भारत में चंद हाथों में पूंजी का संकेंद्रण बेहद खतरनाक तरीके से बढ़ता जा रहा है और यह एक कैंसर की तरह भारतीय राजनीति और समाज को अपने घेरे में लेता जा रहा है।

किंतु, मीडिया पर बढ़ते कारपोरेट प्रभावों और राजनीति के नैतिक पतन ने आम लोगों को वैचारिक रूप से दरिद्र बनाने का अभियान छेड़ दिया। दुष्प्रचार और गलत बयानी मीडिया का स्थायी भाव बन गया और नवउदारवादी नीतियों की अवैध संतानों के रूप में जन्मे नव धनाढ्य वर्ग ने समाज में नेतृत्व हासिल कर लिया।

समाज में बढ़ती विचारहीनता ने अनैतिक जमातों के नेतृत्व हासिल करने में प्रभावी भूमिका निभाई और भारतीय राजनीति ने पूंजी के कदमों तले बिछने में शर्माना छोड़ दिया। चुने हुए जनप्रतिनिधियों की खरीद फरोख्त अब खुले आम होने लगी और पूंजी राजनीति के सिर चढ़ कर अपने खेल खेलने लगी।

नतीजा, मतदाताओं का निर्णय अपनी जगह, राजनीति और कारपोरेट के अनैतिक गठजोड़ के खेल अपनी जगह। ऐसे में लोकतंत्र को मखौल के रूप में बदलना ही था।

अब, ऐसे दृश्य आम हो गए कि मतदाताओं ने किसी सरकार को चुना और सत्ता में कोई अन्य सरकार आ गई। चार्टर्ड हवाई जहाज, उन पर बिकी हुई सामग्रियों की शक्ल में बैठाए और उड़ा कर ले जाए गए जनप्रतिनिधियों के समूह, फाइव स्टार होटलों या सात सितारा रिजाट्र्स में शर्मनाक बैठकों की शक्ल में अनैतिक मोल भाव के अंतहीन सिलसिले...।

सबको पता रहता है कि करोड़ों अरबों की ऐसी राजनीतिक डीलिंग्स में किन पूंजीपतियों का पैसा लग रहा है और अपनी मनमाफिक सरकार बनवा लेने के बाद वे क्या करेंगे, लेकिन इन अनैतिक और अलोकतांत्रिक गतिविधियों के विरुद्ध जन प्रतिरोध की कोई सुगबुगाहट कहीं नजर नहीं आती, उल्टे आम लोग टीवी चैनलों के सामने बैठ इन खबरों और विजुअल्स का मजा लेते हैं, उन पर चटखारे लेते हैं। लोगों का वोट ले कर करोड़ों में बिक जाने वाले जनप्रतिनिधि अपने मतदाताओं की हिकारत के पात्र तो नहीं ही बनते।

पूंजी का चंद हाथों में अनैतिक संकेंद्रण, राजनीति का उसकी दासी बन जाना, मीडिया का उसका भोंपू बन जाना अंततः ऐसे ही विचारहीन, खोखले समाज को जन्म देता है जहां न अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध उपजता है न राजनीतिक अनाचार के प्रति कोई जुगुप्सा का भाव उत्पन्न होता है।

अनैतिक पूंजी जब किसी को हीरो बनाती है तो वह समाजोन्मुख या जनोन्मुख हो ही नहीं सकता। उसे उन इशारों पर नाचना ही है जो उनको फर्श से अर्श पर पहुंचाते हैं।

निष्कर्ष में एक नई तरह की गुलामी आती है जिसमें जनता को पता भी नहीं चलता कि वह किन तत्वों की गुलाम बनती जा रही है। अपनी भावी पीढ़ियों के प्रति दायित्व बोध का नैतिक भाव उसके मन से तिरोहित हो जाता है।

आज का भारत इसी रास्ते पर है जहां चंद हाथों में पूंजी का सिमटना अब कोई रहस्य नहीं रह गया है, न यह रहस्य रह गया है कि राजनीति और कारपोरेट के वे खिलाड़ी कौन हैं जो जनता को गुलाम बनाने की साजिशों में शामिल हैं।

और...मानसिक रूप से गुलाम होते लोग भला प्रतिरोध की भाषा क्यों बोलेंगे? वे तो प्रतिरोध और विचारों की बात करने वालों का मजाक उड़ाएंगे।

आज के भारत का स्याह सच यही है। एक सौ वर्ष पहले अपने उसी फैसले में अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के जज लुइस ब्रैंडिस ने यह पंक्ति भी लिखी थी, "चंद हाथों में पूंजी का संकेंद्रण अंततः मानवता के खिलाफ अनैतिक शक्तियों को ही मजबूत करेगा।" आज वह आशंका सच में तब्दील हो कर हमारे सामने एक सामूहिक विपत्ति की तरह खड़ी हो चुकी है।